IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 28, Issue 4, Series 1 (April, 2023) 64-70
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

मार्क्सवादी नारीवाद

डॉ0 विजय कुमार वर्मा
समाजशास्त्र /सामाजिक विज्ञान
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ

वास्तविक रूप में समाजवादी चिन्तन का आरम्भ कार्ल मार्क्स के द्वारा हुआ। मार्क्स वह प्रथम दार्शनिक है, जो आर्थिक, सामाजिक घटनाओं को भाववादी आधार पर नहीं देखते हैं। उन्होंने सामाजिक घटनाओं का अध्ययन वैज्ञानिक दृष्टि से किया। उनका सम्पूर्ण सिद्धान्त ऐतिहासिक भौतिकवाद और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित है। मारिस कॉनफोर्थ समाजवाद के लिए लिखते हैं। "समाजवाद सम्पूर्ण समाज को भौतिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए उत्पादन के साधनों के सामाजिक स्वामित्व और उनके उपयोग की व्यवस्था है, क्योंकि समाज के आर्थिक आधार के ऐसे बुनियादी रूपान्तरण से ही पूंजीवाद से उत्पन्न दोषो को समाप्त किया जा सकता है और नई शक्तिशाली तकनीक का भरपूर उपयोग किया जा सकता है।" समाज की बुनावट और विभिन्न प्रकार के सामाजिक संबंधों का टूटना बनना उत्पादन के साधनों पर निर्भर करता है। उत्पादन के साधनों पर जैसे–जैसे व्यक्ति का एकाधिकार होता जाता है और इसी बिन्दु से श्रमिक वर्ग का शोषण आरम्भ हो जाता है। इस शोषण में स्त्री और पुरूष दोनों सम्मिलित हैं। वैयक्तिक सम्पत्ति में वृद्धि के साथ नारी भी पुरूष की एक सम्पत्ति बन गई। एक वस्तु बन गई। पुरूष पर निर्भर हो गई। वह दास की तरह परिवार में रहने लगी। स्वतंत्रता, अधिकार आदि उसके पास कुछ नहीं रहे थे। कुछ था तो उसके पास परिवार की चाकरी करना। नारी शोषण की नींव आर्थिक ढ़ांचे पर मनुष्य के एकाधिकार से जन्म लेती है। उद्योगों व औद्योगीकरण की प्रगति के साथ नारी के दोहन व उत्पीड़न में वृद्धि होती जाती है। समाजवादी विचारक इस व्यवस्था के विरोधी है। वे व्यक्तिक सम्पत्ति को शोषण का मूल कारण मानते हैं, क्योंकि उत्पादन के साधनों पर वर्ग का एकतरफा अधिकार होता है। वास्तव में मार्क्स का समाजवादी फलसफा औरत की समाज में आर्थिक–सामाजिक स्थिति, शोषण के ढ़ंगऔर पूंजीपतियों की नीतियों को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करती है। मार्क्स को अवधारणा की एंजेल्स ने एक और कोण से विचार करने के लिए सुझाव दिया कि महिलाओं की दासता की जीव विज्ञान अथवा जैविक आधार पर जानने के बजाय इसे इतिहास में खोजना होगा। इसमें कोई दो मत नहीं है कि किसी भी प्रकार की समस्या के विकास में एक प्रक्रिया निरन्तर कार्य करती रहती है। नारी की विभिन्न समस्याओं को जानने के लिए इतिहास के विकास की प्रक्रिया को, जो विभिन्न घटनाओं से जुड़ी है, जाने बगैर हम किसी वैज्ञानिक निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते हैं।

नारीवाद के पक्षधर और समर्थकों का कहना है कि पूंजीवाद और पितृसत्ता एक दूसरे से गहरे रूप में जुड़े हैं। निश्चय ही यह उत्पान के साधन ही है जिस पर पुरूषों का वर्चस्व है। परिवार पर भी पुरूष का आधिपत्य है। वही मालिक है। उसी के आदेशों का पालन होता है। अस्तु पितृसत्तात्मक ढ़ांचे में नारी चाहे परिवार की हो अथवा किसी कार्यक्षेत्र में कार्य करती हो वह पुरूष के अधीन ही रहता है, क्योंकि वह साधनहीन है। वह उत्पादन कार्य में अपना श्रम बेचती है, पर उत्पादन की मालकिन कभी नहीं बन पाता है। इस मालिकाना शोषण के विरोध में नारीवादी है। पूंजीवादी व्यवस्था में नारी श्रम व शोषणव को अतिरिक्त मूल्य की अवधारणा से बेहतर रूप में समझा जा सकता है, क्योंकि पूंजीपति वास्तविक श्रम से जिस वस्तु का निर्माण करता है, उसका बहुत कम पारिश्रमिक श्रमिक को देता है। अधिकांश लाभ पूंजीपति के हिस्से में आता है। हालांकि विकास की आरम्भिक अवस्था में नारी का दोहन उतना नहीं हुआ, जितना औद्योगिकीकरण के पश्चात् क्योंकि वह महसूस किया जाने लगा कि औरत का कार्यक्षेत्र बाहर नहीं है, वरन् परिवार है। इस तरह नारी परिवार में सिमट कर रह गई और घर के कार्यों में उसे लिप्त कर दिया गया। यह पुरूष प्रधान समाज की नीति थी। उसे गृहलक्ष्मी कहकर धार्मिक और नैतिक जामा भी पहना दिया गया। इसीलिऐ कार्ल मार्क्स धर्म को अफीम की गोली कहते हैं। धर्म ने इस प्रकार की आचार–संहिता को गढ़ा है, जिसमें स्त्री कभी परिवार के बंधनों से मुक्त न हो सके। समाजवाद अंधविश्वासों में लिप्त धर्म का खण्डन मण्डन करता है, जो नारी को दास बनाए रखने में सहायक हो। समाजवाद नारी स्वतंत्रता और समानता के सिद्धान्त पर विश्वास करता है। वह स्त्री और पुरूष के श्रम में भेद नहीं करता और न लिंग भेद के आधार पर नारी का शोषण करता है। समाजवादी विचारधारा के विद्वानों का यह मत है कि वर्ग भेद लिंग भेद को जन्म देता है। इसीलिए समाजवादी वर्गविहीन समाज की स्थापना में विश्वास करते हैं, पर यह वास्तविक जगत में सम्भव नहीं है। इतना अवश्य है कि यदि वर्ग भेद कम होंगे, तो शोषण भी कम होते जाएंगे और यह तभी होगा जब पूंजीवादी व्यवस्था समाप्त होगी और इससे उत्पन्न पितृसत्तात्मक सत्ता का अंत होगा।

इस तरह जो वर्ग शोषण का आधार है, उसके विरोध में मार्क्सवाद खड़ा होता है। मारिस कानफोर्थ इस संबंध में लिखते हैं, "इस तरह मार्क्सवाद हमें सभी घोषणाओं और सिद्धान्तों, सभी संस्थाओं और नीतियों के पीछे चालक शक्ति के रूप में वर्ग, भौतिक और आर्थिक हितो को खोजना सिखाता है। यह हमें उन मतों और संस्थाओं का, जो मजदूर वर्ग के विरूद्ध पूंजीपति वर्ग की सेवा करते हैं, सम्मान करने की नहीं बल्कि विरोध करने की, नए विचारों और रूपान्तरित

संस्थाओं को जो पूंजीपतियों की शक्ति तोड़ने तथा उनके प्रतिरोध पर विजय प्राप्त करने और समाजवादी समाज स्थापित करने के लिए मजदूर वर्ग के नेतृत्व में तमाम मेहनतकश जन–गण के व्यापक गठबंधन को संगठित और प्रेरित करने में सहायक होंगे, संघर्ष की शिक्षा देता है।" इसमें कोई दो मत नहीं है कि नारीवादी चेतना के विकास में मार्क्सवादी विचारधारा अपनी सानी नहीं रखती है, क्योंकि यह हर प्रकार के शोषण के विरूद्ध खड़ा होता है, चाहें वह नारी शोषण हो अथवा पुरूष। सरला माहेश्वरी भी वर्ग और लिंग पर आधारित असमानताओं के संबंध में लिखती है, "जो समाज जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर टिकी हुई असमानताओं से भरा हुआ है, उसमें औरत के प्रति समानता और न्याय पर टिका हुआ व्यवहार हासिल करना एक लम्बे संघर्ष की अपेक्षा रखता है। खासतौर पर इधर के वर्षों में औरतों पर संगठित हिंसा भी होरही है। साम्प्रदायिक और जातीय दंगों में तो हम औरतों पर होने वाले हमलों को देखरहे हैं। हाल ही का जलगांव सेक्स कांड नई उपभोक्ता संस्कृति द्वारा औरतों के विरूद्ध की जा रही संगठित हिंसा का ताजा और भयावह उदाहरण है।" मार्क्स ने स्वयं नारी को केन्द्र में रखकर चिन्तन नहीं किया है, क्योंकि वह समग्र समाज को शोषण मुक्त करने के पक्षधर थे। इतना अवश्य है कि जब देश की आर्थिक शक्तियां पूंजीवादी व्यवस्था से मुक्त होगी, नारी की आर्थिक–सामाजिक स्थिति में सकारात्मक बदलाव आएगा। उनका आर्थिक निर्णयवाद का सिद्धान्त और अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत ऐतिहासिक भौतिकवाद के वैज्ञानिक विश्लेषण का प्रतिफल है।

उदारवादी नारीवादी विचारधारा

समाज में धार्मिक जड़ता की अंधविश्वासी जड़े जब उखड़ने लगती है और विज्ञान सत्य को उजागर करता है तो वैज्ञानिक तर्क अपनी नई जमीन बनाते है। विज्ञान और तर्क सोच की जहां नई जमीन तैयार करते हैं, वहीं समाजिक संबंधों को लेकर, जो जाति, लिंग व वर्ग में विभाजित है, उन पर मानवतावादी दृष्टि से विचार करना आरम्भ हो जाता है। 15वीं सदी एक ऐसी सदी की शुरूआत थी, जहां सामाजिक विज्ञान और विशुद्ध विज्ञान के मध्य रेखा खिंचने लगी थी। चेतना के नए आयामों ने जगह बनाई थी। वहीं फ्रांस की क्रांति के तीन नारों, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व ने, पूरे विश्व में मानवतावादी चेतना को उत्पन्न किया। मानव समाज के रूढिऋवादी संबंधों के फ्रेम को नया स्वरूप प्रदान किया। विकास की प्रगति के आयाम नई दिशा की ओर अग्रसर हुए। बुद्धिजीवियों और विचारकों का एक ऐसा वर्ग सामने आया, जो समाज की विभिन्न समस्याओं पर उदारतापूर्वक विचार करने लगा। नारी समाज में व्याप्त समस्याओं पर, जो मूलतः लिंग, भेद, जैविक आधार और असामनता पर खड़ी थी, उदारतापूर्वक नए ढ़ंग से विचार किया जाने लगा। नारी की अस्मिता जो सदियों से डेड–स्टार की अंधेरी गुफाओं में पड़ी थी, उन्हें पहचान मिली। नारी को समाज में सम्मानपूर्वक स्थान देने का प्रयास किया जाने लगा। जेन्डर पहचान, लिंग के आधार पर भेदभाव, समानता की उपेक्षा, नारी को परिवार, समाज, समाज में उचित स्थान न देना और नारी शोषण व अत्याचार जैसे महत्वपूर्ण विषय नारीवादी विचारधारा में सम्मिलित हो गए, जो उदारवादी नारीवाद की जमीन तैयार करने लगे। यह एक महत्वपूर्ण शुरूआत थी। नारीवाद विचारधारा के ये सभी समर्थक आर्थिक सामाजिक ढ़ांचे को बदलने की पेशकश करते हैं। एक ऐसा समाज का ढ़ांचा बने, जिसमें स्त्री सम्मानपूर्वक रह सके। स्त्री–पुरूष में समानता की भावना है। जैविक आधार पर औरत को दोयम दर्जे पर रखने की अवधारणा को खारिज किया जाए। इस प्रकार की विचारधारा का जन्म 18वीं सदी में हो गया था। मालती सुब्रह्मण्यम नारीवाद को स्पष्ट करते हुए लिखती है, "अठारहवीं सदी के प्रारम्भिक उदारवादी नारीवादियों ने मानवीय गरिमा और समानता को उदारवादी धारणाओं और महिलाओं के जीवन की वास्तविक हकीकत के बीच व्याप्त अन्तर्विरोध को रेखांकित किया है। जेन्डर आधारित विभेद और परिवार तथा समाज में महिलाओं की दोयम स्थिति को तर्कसंगत ठहराने वाली आम धारणाओं को सामाजिक अनुकूलन और जड़ीभूत सांस्कृतिक मूल्यों की उपज के तौर पर समझने की भी उसने कोशिश की। समानता और न्याय की अवधारणाओं के संदर्भ में उसने विवाह नामक संस्था के मूल्यांकन का प्रयास किया। ये सभी विचार महिलाओं की समानता, कानूनी सुधारों की मांग, समान अवसरों तक पहुंच, सार्वजनिक दायरों में शामिल होने के प्रति महिलाओं के अधिकार तथा मानव के तौर पर अपने अंदर निहित सम्भावनाओं को पूरा करने का अवसर यदि विभिन्न मसलों पर आधारित का आधार बने।" फ्रांस की क्रांति की पश्चात् राजनीतिक ढ़ांचे में बदलाव का मुद्दा भी गरम होने लगा। विचारकों पर इस आंदोलन का प्रभाव यह पड़ा कि वैयक्तिक स्वतंत्रता और समानता पर जहां जोर दिया गया, वहीं सत्ता पर अंकुश लगने की बात भी उभर कर आई। साथ ही मतदान का प्रश्न भी उठाया गया, क्योंकि पूर्ण नागरिकता से नारी को पृथक रखा गया। इन्हें इस तर्क के आधार पर मताधिकार से वंचित रखा गया था कि स्त्रियां संवेदनशील, नाजुक और बुद्धि से कमजोर होती है। इसीलिए उन्हें राजनीति और राजनीतिक मताधिकार से वंचित रखने की पैरवी की जाती रही है, लेकिन बैथम और जान स्टूअर्ट मिल जैसे विद्वानों ने महिलाओं के मताधिकार का खुले रूप में समर्थन यह किया कि नारी मानवजाति का आधा हिस्सा है। विद्वानों और दार्शनिकों में बहस होती रही। सहमति और असहमति के दौर चलते रहे और अंत में नारी को राजनीतिक मताधिकार प्राप्त हो गया। इस तरह उदारवादी विचारधारा ने स्त्री समाज को उसका अधिकार दिलानें में उदारता का परिचय दिया। साथ ही स्त्री को पुरूषों के समकक्ष लाने का प्रयास भी किया।

भारत में पुनर्जागरण आन्दोलन ने उन धार्मिक अंधविश्वासों और जड़ता को समाप्त करने का भरपूर प्रयास किया जिसमें नारी को दास–सा जीवन व्यतीत करना पड़ता था। राजा राममोहन राय ने स्त्री के प्रति किए जा रहे जो अत्याचारों का कड़ा विरोध किया। सती प्रथा जैसे जघन्य अपराध और अमानवीय कृत्यु को कानूनी रूप से समापप्त करवा कर ही सांस ली। बंगाल के कट्टरपंथी ब्राह्मण और पुरोहित सती प्रथम को बनाए रखने के पक्षधर थे। राजा राममोहन राय ने नारी को जागरूक बनाने के लिए अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना की। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय योगदान दिया। स्वामी विवेकानन्द का विचार था कि भारत की उन्नति तभी सम्भव है, जब पाश्चात्य जगत की शिक्षित महिलाओं की तरह भारतीय महिलाएं भी शिक्षित और कामकाजी हों। ज्योतिबा फुले ने भी

नारी और दलित नारी शिक्षा के क्षेत्र में अविस्तरणीय कार्यर्य किया है। उनका भी कड़ा विरोध किया गया, पर वे अपने लक्ष्य से पीछे नहीं हटे। शिक्षा जगत में शिक्षा पद्वति का आपका जो मॉडल था, उसे अंग्रेज शासकों ने भी सराहा औश्र स्कूलों का उनका मॉडल अपनाने का आग्रह किया। विद्वानों, समाजसेवकों और चिन्तकों की एक लम्बी कतार है, जो महिलाओं को सक्षम, योग्य और शिक्षित बनाने के पक्षधर रहे हैं। आधुनिक विद्वानों में गांधी, जयप्रकाश नारायण, विनोबा भावे आदि ऐसे चिन्तक हैं, जिन्होंने नारी को समानता और सामाजिक न्याय दिलाने में भूरभूर प्रयास किया है। भारत की भूमि पर नारीवादी उदारवाद संविधान, संसद और राजनीति के गलियारों में अपनी ठोस जमीन बनाने में लगा है। फिर भी पुरुषों की एक बड़ी जनसंख्या नारी को परिवार के कार्यों तक ही सीमित रखना चाहती। वे अभी पितृसत्तात्मक मानसिकता से उबर नहीं पाए हैं। फिर भी संकीर्ण सोच के ये लोग खुले रूप में नारी–प्रगति की आलोचना करने में कतराने लगे हैं। यह बहुत बड़ी सफलता है। दूसरी तरफ समाजसेवी संगठन, राजनीति से जुड़ी महिलाएं, एम.एल.ए., एम. पी. और मंत्री आदि यह प्रयास कर रहे हैं कि सत्ता में नारी की भागीदारी बढ़नी चाहिए। इसीलिए वे संसद और विधान मंडलों में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने की मांग कर रहे हैं। कुछ इसे पक्ष में हैं और जो विरोधा में है उन्हें भय है कि उनकी राजनीति में और अपने दल पर जो पकड़ है वह समाप्त हो जाएगी। जिस गति से महिलाओं में राजनीतिक चेतना और अपने अधिकरों के प्रति जागरूकता बढ़ी है, वह नारी प्रगति का अच्छा संकेत है। इसके साथ ही नारी के प्रति उदारवादी दृष्णिकोण में वृद्धि हुई है। यही कारण है कि आज स्त्री बड़े से बड़े पदों पर विराजमान है। यह उदारवादी का उदाहरण है। 21वीं शताब्दी में पुरुष का नारी पर वर्चस्व बहुत कम हो जाएगा, जो नारी को महज एक वस्तु और वैयक्तिक सम्पत्ति के रूप में देखते हैं। इसके साथ ही पितृसत्तात्मक दबाव और उत्पीड़न नारी पर किया जाता था, कम से कम नगर और महानगर की शिक्षित परिवारों में कम होता जा रहा है। पत्नी के लिए पति की सोच और मानसिकता में बदलाव आया है। यह उदारवादी दृष्टिकोण का परिणाम है।

रेडिकल नारीवादी विचारधारा

कोई भी विषय सदैव उसी रूप में नहीं रहता। उसकी अन्तर्वस्तु में निरन्तर बहुत सी चीजें घटती–बढ़ती रही हैं। विषय को लेकर नई विचारधाराएं जन्म लेती रहती हैं। एक ही समय में एक ही विषय पर विद्वानों के विचारों में मतभेद होते है। इस तरह एक ही विषय पर विचारधाराएं भी भिन्न–भिन्न प्रकार की हो जाती हैं। नारीवादी विचारधारा के साथ भी ऐसा ही हुआ है। यही चिन्तन और विचारधारा की प्रवृत्ति होती है। रेडिकल नारीवादी विचारधारा स्त्री देह को लेकर जो विभिन्न प्रकार से शोषण का शिकार बनती है, उसका विरोध करती है, जैसे बलात्कार वेश्यावृत्ति आदि। सीमा दास रेडिकल नारीवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखती हैं : "दरसल 'रेडिकल नारीवाद' में निहित 'रेडिकल' शब्द का यह अर्थ 'अतिवादी' या 'हठधर्मी' कतई नहीं है। इसकी उत्पत्ति 'जड़' के लिए लेटिन शब्द से हुई है। रेडिकल नारीवादी सिद्धान्त में पुरुष द्वारा महिलाओं के उत्पीड़न को समाज में व्याप्त सब प्रकार के सत्ता–सम्बन्धों की गैरबराबरी की जड़ में देखा जाता है। रेडिकल नारीवादियों के हिसाब से महिलाओं की यौनकता और प्रजनन की क्षमता दोनों महिलाओं की शक्ति औरी उनके उत्पीड़न के जड़ में होते है। इस सिद्धान्त के पक्षधर और पैरवीकार सेक्स के किसी भी प्रकार के दोहन और उत्पीड़न के विरूद्व खड़े होते हैं। दूसरी ओर इस सिद्धान्त में भी स्त्री को अनेक कार्यों के लिए उपयुक्त नहीं समझा जाता है। इसलिए एक लम्बे समय तक स्त्री को सत्ता में भागीदारी से वंचित रखा गया। जैविक धारणाओं कात्र, जो स्त्री– पुरुष को दो श्रेणियों में विभाजित करता है, रेडिकल नारीवादी विरोध करते हैं। यही कारण है कि अमेरिका और ब्रिटेन में लिंगाभेद के विरूद्व आवाज बुलन्द की गई। ऐसे संगठनों की स्थापना की जाने लगी, जो पुरूषवादी सत्ता का विरोध करते थे। रेडिकल विचारधारा के अनुयायी किसी ठोस सिद्धान्त को लेकर नहीं चल रहे थे, पर ये नारीवादी जमीनी आन्दोलनों से जुड़े थे।

अनामिका लिखती है, "बाद की रेडिकल फेमेनिस्ट इन अतिरेकों से प्रयाण करती हुई इस निष्कर्ष पर पहुंचीं कि स्त्रियों की गर्भधारण की क्षमता उनके विकास में बाधक नहीं है, बाधक है प्रजनन और शिशु संरक्षण पर पुरूषों का सीधा नियंत्रण, जिसे तोड़ने के लिए औरतों को निम्नलिखित सुविधाएं उपलबध कराने की बात की गई।

1. गर्भनिरोध और गर्भपात सम्बन्धी सारे निर्णय उनके हो; 2. और यह निर्ण भी कि अपने बच्चों को वे अकेली पालना चाहती हैं अथवा पति, मां या अपने किसी अन्य रिश्तेदार के सहयोग से या फिर सरकारी/गैर सरकारी डे–केयर/बेबी सिटर्स आदि की सहायता से। यदि रेडिकल नारीवादी विचारधारा का विश्लेष्ण किया जाए तो निम्नलिखित कुछ बिन्दु सामने आते हैं –

1. नारीवादी विचारधारा के पक्षधर यौन–उत्पीड़न का विरोध करते हैं।
2. नारी देह सौन्दर्य की मात्र नारी नही है।
3. पुरूष से नहीं पितृसत्तात्मक वर्चस्व के प्रति विरोध दर्ज करते हैं।
4. विभिन्न संस्थाओं के संरचनात्मक ढांचे में बदलाव किया जाना चाहिए, जैसे आर्थिक–सामाजिक, राजनीतिक ए9वं वैधानिक। इनमें इस रूप में परिवर्तन किया जाए, जिससे स्त्री को समान रूप से अधिकार प्राप्त हो सके।
5. लिंग भेद के आधार पर स्त्री और पुरूष के मध्य किसी प्रकार की लक्षमण रेखा नहीं खींची जाए।
6. जैविक सिद्धान्त का इन्होंने खण्डल किया।
7. मातृशक्ति के रूप में नारी के प्रदर्शन को यह सही नहीं मानती। मातृशक्ति की अवधारणा को धार्मिक जामा पहनाकर उसे बहुत से सामाजिक कार्यों से पृथक कर आदर्शों का लबादा ओढ़ाया जाता है, जो नारी प्रगति में बाधक है।
8. लिंग भेद की सोच और मानसिकता स्त्री की जीवनशैली और कार्यशैली को पृथक ढंग से गढ़ते हैं, जिससे उनकी पहचान अलग ढंग से हो जाती है। इस प्रकार के भेद समाप्त हों।
9. नारी जन्म से नारी नहीं होती, बल्कि उससे समाज बनाता है। इसलिए समाज की सोच में बदलाव लाना है।

10.उन्हें मातृत्व प्राप्त करने हेतु विवश न किया जाए।
11. नारी मात्र यौन सन्तुष्टि का न तो साधन है और न वस्तु।
12. वे अपने व्यक्तित्व का निर्माण स्वतः करने के पक्ष में हैं, जिसमें पुरूषों का किसी तरह का हस्तक्षेप न हो।
13. नारीवादी विचारधारा के समर्थक उस पुरूष प्रधान संस्कृति का विरोध करते हैं, जिसे उन्होंने अपने स्वार्थों को ध्यान में रखकर बढ़ा है।

वास्तव में सन् 1949 में सिमोन द बोउआर की 'सेकन्ड सेक्स' प्रकाशित होने पर नारी जगत को संघर्ष करने की एक नई रोशनी दिखाई पड़ी। आरम्भ्ज्ञ में वे नारीवादी नहीं थी, लेकिन कालान्तर में वे नारीवादी बन गई। सिमोन उन बातों पर जोर देती हैं जो नारीको नारी बनाए रखने के लिए जिम्मेदार है, जैसे गैर–महत्वपूर्ण कार्य स्त्रियों से कराए जाते हैं। इस तरह व्यावसायिक और सरकारी कामों में भी स्त्री पुरूष के समकक्ष नहीं है। इसलिए वे इन सभी चीजों की आलोचना करती हैं और विरोध दर्ज करती हैं कि स्त्री–पुरुषों के मध्य दोहरे मापदण्ड क्यों है? वे इस बात पर जोर देती है कि स्त्री की मुक्ति का मार्ग स्वयं स्त्री बनाएगी और इसके लिए उसे स्वयं संघर्ष करना होगा। उनकी प्रसिद्ध पंक्ति है, "स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है।" वास्तव में नारीवादी विचारधारा ने उन समस्त चीजों का पर्दाफाश किया, जिनके द्वारा पुरुष स्त्री पर अनादिकाल से एकाधिकार जमाए हुए थे। उनके देह सौन्दर्य पर नियंत्रण बनाए हुए हैं। नारीवादी विचारधारा के समर्थक जैविक निर्णयवाद के पक्षधर है। इस आधार पर इनके सिद्धान्त की कटफ आलोचना की जाती है। इस तरह एलेन म्योर और इलने शोवाल्टर ने स्त्रियों की साहित्यिक अभिव्यक्तियों एवं उपसंस्कृतियों को एक प्रगतिशील परम्परा के रूप में स्थापित किया। उपसंस्कृति के प्रगतिशील प्रस्तुतीकरण ने नारी समाज की एक ऊर्जायुक्त चेतना को प्रोत्साहित किया, जिससे वे अनने अस्तित्व एवं अस्मिता का संघर्ष करे सके।' इस तरह नारीवादी विचारधारा ने एक ठोस स्वरूप धारण किया।

नारीवादी विचारधारा में नारी मुक्ति का प्रश्न

नारीवादी विचारधारा में नारी मुक्ति विचार की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। नारी मुक्ति की अवधारणा विभिन्न विचारों का एक विशाल फलक है। विचारों के इस पुंज के घेरे में अनेक छोटे–बड़े घेरे समाहित हैं। देश–विदेश के अनेक विद्वान नारी मुक्ति को अलग–अलग के कोणों से देखते हैं। स्त्री के सम्पूर्ण परिवेश का विश्लेषण करते है। परिवार, समाज, देश व विभिन्न कार्यक्षेत्रों में वह कहां है और उसकी स्थिति और भूमिका क्या है? विद्वान, नारी से सम्बन्धित आर्थिक, सामाजिक पारिवारिक परिस्थितियों का विश्लेषण करते हैं। ये सभी प्रश्न खड़ करते हैं कि नारी बंधनों से अभी तक मुक्त क्यों नहीं हो पाई? क्यों वह पुरूष, पिता, पति अथवा किसी पुरूष के अधीन जीवन निर्वाह करती रही? उसे पुरूषों की तरह शिक्षित होने के समान अवसर क्यों नहीं दिए गए? वे कौन सी परिस्थितियां आज तक समाज में घुली–मिली हैं तथा जीवित हैं, जिनमें नारी स्वतंत्र रूप में सांस नहीं ले पा रही है? वे कौन से परम्परागत और धर्म के अंधविश्वासी बंधन हैं, जिन्हें आज तक वह पूरी तरह से तोड़ नहीं पाई हैं? वे कौन से थोथे मिथ हैं जिन्होंने नारी के जीवन में आदर्शों को गढ़कर उसे पुरूष समाज का बंदी बना दिया?

परिवार की संरचना और उसके प्रकार्यात्मक ढांचे में किस प्रकार की मनोवैज्ञानिक, धार्मिक व नैतिक चीजें घोली गई, जिन्होनें आज तक स्त्री को उबरने नहीं दिया? लोक–परलोक का दर्शन महिला के कर्मकाण्डों से इस प्रकार क्यों जोड़ा गया कि पति के मृत्यु के पश्चात् भी वह ढोती है? उससे जीने का अधिकार क्यों छीना गया? उसे सती होने के लिए विवश क्यों किया गया? क्यों विधवा होने पर उसे पुनर्विवाह से रोका गया? (सौभाग्य से अब इसे कानून बनाकर वैध षोषित कर दिया गया है) स्वतंत्रता और समानता की बात तो बहुत दूर की बात है, अभी तो स्त्री पितसत्तात्मक ढांचे के वर्चस्व के दबाब से ही बाहर नहीं निकल पाई है। यह पुरूषवादी सामन्ती सोच और मानसिकता ढहने पर ही पुरूष और स्त्री में समानता और सहमित्रता की भावना उत्पन्न हो सकेगी। उस दिन नारी मुक्ति की नींव रखी जाएगी। नारी से जुड़े उपरोक्त प्रश्न उत्तर मांगते हैं कि क्यों नारी मुक्ति का प्रश्न आज ज्वलन्त रूप में हमारे सामने खड़ा है?

वास्तव में नारी मुक्ति के प्रश्नप पर जाने कितने टेढ़े–मेढ़े पेंच हैं। अनेक प्रकार की स्त्री समस्याएं, जो कहीं देह सौन्दर्य से जुड़ी हैं तो कहीं बाजारवाद के ग्लेमर में, तो कहीं कार्यालय के बासिजिम में, तो कहीं परिवार के कर्मकाण्ड में तो कहीं समानता और सामाजिक न्याय की मांग में। यह सभी समस्याएं कहीं न कहीं समाज के आर्थिक ढांचे से जुड़ी है। इनका मूल कारसण है कि उसे न तो शिक्षित होने दिया और न स्वावलम्बी बनने दिया। दासता की जंजीरे उसके पैरों में डाल दी गई। कामरेड लेनिन की पुस्तक 1972 में हिन्दी में 'नारी मुक्ति' नाम से प्रकाशित हुई। विशेष तौर से लेनिन ने वेश्यावृत्ति और मुक्त प्रेम पर सीधा प्रहार किया कि यह पूंजीवादी व्यवस्था की देन है, जिसमें स्त्री वस्तु की तरह प्रयुक्त की जाती है। "संक्षेप में कहें कि उस विशिष्ट साहित्य में प्रतिपादित यौन सिद्धान्तों को मैं संदेह की दृष्टि से देखता हूँ, जो पूंजीवादी समाज की मत उर्वरा भूमि पर फलता–फूलता है। मैं उन लोगों का विश्वास नहीं करता, जो अपनी नाभि के ध्यान में मग्न भारतीय वामचारी योगी की तरह निरंतर और आग्रहपूर्वक यौन समस्याओं में रत हैं। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यौन सिद्धान्तों की यह अति प्रचुरता जो अधकतर केवल प्राक्कल्पना मात्र हैं और वह मनमानी प्राक्कल्पनाएं भी निजी आवश्यकताओं की उपज हैं। वह पूंजीवादी नैतिकता के सामने अपनी अस्वाभावित अथवा अतिक्रामक यौन जीवन को औचित्य प्रदान करने और अपने प्रति सहिष्णुता की याचना करने की ख्वाहिश से पैदा होती है। पूंजीवादी भौतिकता के लिए यह दर–पर्दा सम्मान मेरे लिए उतना ही घृणास्पद है, जितना कि रस ले–लेकर यौन समस्याओं में डुबकी लगाना।" वास्तव में लेनिन ने उन सभी प्रेम–प्रसंगों की कटफ आलोचना की, जो यौन समस्याओं से जुड़ी हैं और स्त्री के देह का खुला शोषण किया जाता है। 'सेक्स इन्डस्ट्री' पूंजीवादी व्यवस्था की देन है। सच यह भी है कि इसका अन्तराष्ट्रीय बाजार है।

आगे वे पुरुष व पूंजीवादी समाज की आलोचना करते हुए कठोर शब्दों में कहते हैं, "क्या इसका इससे भी अधिक प्रत्यक्ष सबूत हो सकता है कि मर्द शांतिपूर्वक औरतों का तुच्छ, एकरस, पस्तकारी समयनाश्यी काम में, घरेलू काम में खपना देखते रहते हैं। वे यह देखते रहते हैं कि इस काम में किस तरह उनका मानस क्षितिम संकुचित हो रहा है, उनका दिमाग कुंद हो रहा है, उनके दिलों की धड़कन शिथिल हो रही है, उनके इरादे कमजोर हो रहे हैं? मैं बेशक पूंजीपति वर्ग की महिलाओं का जिक्र नहीं कर रहा हूँ... जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह बहुसंख्यक औरतों पर बेहद लागू होता है, जिनमें मजदूर की बीवियां भी शामिल हैं, चाहे वे सारा दिन फैक्टरियों में ही क्यों न बिताती और खुद पैसा कमाती हों। यह वक्तव्य लेनिनन के उस अन्तर्मन का द्वंद्व प्रदर्शित करता है कि बहुसंख्यक वर्ग की महिलाओं का किस–किस तरह से दोहन किया जाता है। उन्हें इस रूप में बनाए रखने के लिए पूंजीवादी व्यवस्था चालें चलती रहती हैं। इसलिए यह बेहद जरूरी है कि पूंजीवादी व्यवस्था को बेनकार किया जाए, जिससे औरतों को स्वतंत्र हवा में मुक्त होकर सांस लेने का अवसर प्राप्त हो सके।

जब कभी नारी मुक्ति प्रश्न खड़ा करते हैं अथवा हम जब इस पर विचार करते है तो सहज ही यह भाव जन्म लेता है कि स्त्री बंधनों में बंधी, पुरुष वर्चस्व वाले समाज में, आज भी जाने कहां गुलाम है, जैसे वह परिवार बौर बाह्य जगत में भी स्वतंत्रत नहीं है। इसका मुख्य कारण है घर और बाहर दोनों ही व्यवस्था का निर्माता पुरुष ही है। इसने अपने स्वार्थों को ध्यान में रखकर व्यवस्था का निर्माण किया है। इसीलिए डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं, "भारत की नारी समस्या को हमें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य वस्तुतः देश का इतिहास है, समाज का इतिहास है। इसके अलावा वह परिवार का इतिहास है।... पुराना परिवार मोटे तौर पर संयुक्त परिवार है और संयुक्त परिवार में स्त्री की स्थिति लगभग वही है, तो सामन्ती समाज में जमींदार के नीचे काम करने वाले किसान की होती है।... वह सवाल नारी की पराधीनता से जुड़ा है। और नारी की यह पराधीनता दो तरह की है। एक सामन्ती ढंग की पराधीनता है, दूसरी पूंजीवादी ढंग की पराधीनता है। सामन्ती समाज के बारे में एंजेल्स ने लिखा है कि सामन्ती समाज में स्त्री स्वाधीन होती है, केवल वेश्या बनकर। इसलिए कि वह अपने को बेच तो सकती है। गृहस्थ स्त्री तो अपने को बेच भी नहीं सकती।

विनोद मिश्र नारी मुक्ति की अवधारणा को मार्क्सवादी परिपेक्ष्य में देखते है। उस आर्थिक–सामाजिक व्यवस्था में झांकते हैं, जिसने नारी को नारी नहीं रहने दिया, वरन उसे व्यवस्था का गुलाम बना दिया। परिवार के ढांचे को खंगालते है। मातृसत्तात्मक परिवार में नारी का महत्व था, क्योंकि इस समाज में वर्ग–विभाजन का अभाव था। वैयक्तिक सम्पत्ति नहीं थी। कृषि के विकास के साथ वर्ग भी बने और वयथ्कतगत सम्पत्ति का विकास हुआ। इसी के साथ गृहलक्ष्मी का पराभव भी आरम्भ हो गया। मिश्र जी का विचार है कि "सर्वहारा की गुलामी और नारी की गुलामी एक ही समय और एक ही तरह के कारणें से शुरू हुई।... नारी अगर सबसे ज्यादा मुक्त रही भी है तो सर्वहारा परिवारों में। नारी से गुलामी मनवाने के लिए पुरुषों ने कितने धार्मिक, रीति–रिवाज बनाए, कितनी सामाजिक संहिताएं बनाई। हिन्दू समाज में तो पति को ही परमेश्वर बना दिया गया। यहां तक कि पति की मृत्यु के बाद पत्नी को सती होने तक को मजबूर कर दिया गया। मिश्र नारी मुक्ति के लिए निम्नलिखित कुछ सुझाव प्रस्तुत करते हैं, जो नारी मुक्ति की दिशा निर्धारित करने में सहायक होंगेः

1. ऐसी सारी विचारधाराओं व परम्पराओं के खिलाफ जिहाद छेड़ना होगा, जो नारी को गुलाम बनाते हैं।
2. कम्युनिस्ट नारी संगठन को पुरुष और नारी के बीच समानता के लिए प्रगतिशील कानून बनाने के लिए जिस तरह लड़ना है, उससे भी अधिक इन कानूनों को लागू कराने के लिए संघर्ष करना है।
3. अपने–अपने क्षेत्र में नारी उत्पीड़न को खास–खास घटनाओं के खिलाफ महिलाओं को संगठित करना।
4. कम्युनिष्ठ नारी संगठन को किसानों–मजदूरों के जनांदोलनों में, राजनीतिक आन्दोलनों में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेने के लिए महिलाओं को प्रेरित करना होगा।
5. नारी संगठन पति–पत्नी संबंधों व पारिवारिक संहिता में क्रांतिकारी बदलाव को भी अपना नारा बनाएगा।... आज मुस्लिम महिलाएं तलाक के प्रचलित तरीके के खिलाफ आवाज बुलन्द करने के लिए पर्दे से बाहर निकल रही हैं।
6...नारियों को अपनी भूमिका को बढ़ाना; अन्ततः नारी को अपनी मुक्ति खुद हासिल करनी होगी।

निष्कर्ष रूप में विनोद मिश्र इस नतीजे पर पहुंचते हैं, "नारी और पुरुष के बीच प्राकृतिक विभाजन को छोड़कर बाकी सारे विभाजन कृत्रिम है। ऐतिहासिक विकास के दौर न इन विभाजनों को संस्थाबद्ध रूप दिया है। वास्तव में नारी मुक्ति की अवधारणा का किसी विशेष फ्रेम, सिद्धान्त और वाद के रिए समाधान ढंढना कठिन है। सभी सिद्धान्तों में कुछ अच्छाइयां भी हैं और कमियां भी (जिन पर हम आगे विचार करेंगे)। सिमोन द बुआ का यह कहना उचित ही है कि "जब तक समाज में निजी सम्पत्ति की अवधारणा प्रचलित रहेगी और पुरुष स्त्री को अपनी सम्पत्ति मानेगा, तब तक नारी के द्वारा किया गया व्यभिचार अति निम्न माना जाएगा"

परमानन्द श्रीवास्तव प्रसिद्ध आलोचक और साहित्यकार हैं। आप पुरुष–वर्चस्व समाज में स्त्री मुक्ति की चुनौतियों के संदर्भ में नारी मुक्ति की व्याख्या करते हैं। उन चीजों को गिनाते हैं, जो प्रतयक्ष या अप्रेत्यक्ष रूप में उसे मोहपाश में बांधे रहती हैं। कभी मजदूरी में वह पुरुष की दास बनती है। कभी बाजारवाद के ग्लेमर में और कभी देह सौन्दर्य का लाभ उठाकर विज्ञापन के बाजार में छलांग लगाती है। कभी मॉडल बनती है, कभी एंकर बनती है। बाजार में वह देह सौन्दर्य के बहाने खड़ी होकर व्यापार ही तो कर रही है। परमानन्द श्रीवास्तव लिखते हैं, "भूमण्डलीकरण के दौर में एक ओर स्त्रियाँ अंतरिक्ष यात्रा पर हैं, दूसरी ओर, बसों–ट्रेनों तक में सुरक्षित नहीं हैं। स्त्री उत्पीड़न है तो है, क्या फर्क पड़ता है। विश्वमन्डी में आज भी स्त्री खरीददार से अध्का बिकाऊ वस्तु है। एक ओर अंतराष्ट्रीय महिला दिवस पर स्त्री सशक्तीकरण के दावे हैं दूसरी ओर मजदूरिनें आज भी सामन्तों के लिए शोषण का बहाना है। केवल स्वतंत्रता और

समानता प्राप्त हो जाने पर भी नारी मुक्ति का प्रश्न पूर्णतया हल नहीं हो जाता, क्यों भारतीय संस्कृति में लिंग भेद, जेन्डर और जाति वर्ग व नारी, दलित और कामकाजी महिलाएं, दैनिक वेतनभोगी महिलाएं (जो ठेकेदार की दास होती है) घर से लेकर बाजार तक और बाजार से लेकर कार्यालय तक बस और ट्रेन में कहीं भी सुरक्षित नहीं है। उसे सामाजिक सुरक्षा की गारन्टी प्राप्त नहीं है, वह हर जगह ठगी जाती है। बलात्कार, अपहरण, हत्या, सब कुछ नपारी के सथ आज बड़ी संख्या में घटित हो रहा है। फिर प्रश्न है मात्र स्वतंत्रता मिलने से नारी मुक्ति की समस्या का समाधान कैसे हो सकता है जब तक सामाजिक और सरकारी व्यवस्था पूरी तरह चुस्त और दुरूस्त न हो जाए। मुझे यह कहने में किंचित भी संकोच नहीं है कि नारी मुक्ति को लेकर सम्पूर्ण भारत में अभी तक कोई बड़ा आन्दोलन खड़ा नहीं किया गया है। यह भी दुख की बात है कि समाजवादी देश, जिनसे बहुत आशा थी कि वे शोषण, उत्पीड़न और नारी दोहन को समाप्त करेंगे, वे पूंजीवादी व्यवस्था को अपना रहे है। भूमण्डलीकरण की नीति को अपनाकर विश्व–बाजार क अंग बन रहे हैं, फिर नारी मुक्ति का मॉडल कौन सा होगा? फिर भी स्त्री अपने श्रम, क्षमता, योग्यता और बुद्धि से निरन्तर आगे बढ़ रही है। परमानन्द श्रीवास्तव आधुनिक नारी के लिए लिखते हैं, "पुरूषसत्तात्मक सर्वस्व का आतंक सारी दुनिया में है, जब कि स्त्रियां सभी क्षेत्रों में आर्थिक स्वाधीनता सहित बहुत कुछ पाने के लिए संघर्ष कर रही हैं। अधीनता के सभी मिथकों को तोड़कर वे नई आजादी हासिल कर रही हैं। पुरुष की भूमिका भी अब बदल सकती है। वह उद्धारक होकर सहज रूप से सहचर मित्र हो सकता है। शारीरिक संरचना की भिन्नता के बावजूद व पुरुष के अपने इलाके में भी दखल दे सकती है। स्त्री–मुक्ति फिर भी प्रश्नांकित है। आधुनिक समय की महिलाओं की प्रशंसा करते हुए प्रसिद्ध पत्रकार सुभाष सेतिया लिखते हैं : "जब हम भारतीय महिलाओं की विकास–यात्रा पर नजर डालते है तो इस बात पर संतोष होता है कि घर की चारदीवारी को ही अपनी सार्थकता की पहचान मानने वाली औरतें आज न केवल अपने अस्तित्व, बल्कि अपनी स्वतंत्र सत्ता के प्रति भी सचेत हैं। भले ही लगभग आधी औरतें अभी तक अनपढ़ हैं, किन्तु लड़की को शिक्षित करने की महत्ता को लेक अब समझ गए हैं। ... विभिन्न परीक्षाओं व प्रतियोगिताओं में लड़कियां लड़कों से आगे निकल रही है। निश्चय ही नारी मुक्ति का प्रश्न आर्थिक रूप से स्त्री का स्वावलम्बी होना भी है। नारी दासता का बहुत बड़ा आधार पुरूष की आर्थिक गुलामी भी है। नगर व महानगर की भौतिक संस्कृति में नारी चेतना इस रूप में बढ़ी है कि वह कामकाली महिला बनकर स्वयं आत्म सम्मान अर्जित करना चाहती है फिर भी अभी नारी को अनेक मोर्चों पर संघर्ष करने के लिए अपने को तैयार करना होगा। अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए पुरूष की बनाई चुनौतियों से डटकर संषर्घ करना होगा। नारी मुक्ति के संघर्ष की एक बड़ी कठिन यात्रा है, जिस पर उसे विजय पानी है।

विश्लेषण

नारीवादी विचारधारा सदियों पूर्व की अवधारणा है। उत्तर–वैदिक युग से लेकर मनुस्मृति की रचना तक स्त्री के विभिन्न कर्तव्यों और अधिकरों पर विचार किया गया है। इन सभी धार्मिक शास्त्रीय पुस्तकों में नारी को धार्मिक कर्मकाण्डों से बांधा गया है। सोच–समझकर नियोजित ढंग से नारी को आचरण और नैतिकता के घेरे में रखकर नियम बनाए गए। पुरूष चिन्तकों ने इतनी चतुरता से धार्मिक आदर्श, मूल्य और कर्मकाण्ड को सीमेन्टेड किया कि स्त्री जीवनपर्यन्त उसका खण्डन–मन्डन न कर सके। इसे भी मैं नारीवाद का धार्मिक विचार कहूंगा, जिसने नारी को परिवार की चारदीवारी में बंदी बनाकर रखा। बौद्ध और जैन धर्म ने, जो नास्तिक धर्म हैं, अंधविश्वासों, रूढ़ियों और परम्पराओं की आलोचना की, जिन्होंने स्त्री और पुरूष दोनों को रूढ़ियों का जामा पहना दिया। इस कार्य में पुरोहितों का बहुत बड़ा योगदान है। इसीलिए मार्क्स धर्म को अफीम का गोला कहते हैं। यह धार्मिक बंधन ही रहे हैं, जिन्होंने औरत को परिवार की ड्योढ़ी नहीं लांघने दी। धर्म के साथ अनुष्ठानिक क्रियाएं और जो मिथ जोड़े गए हैं, उन्होंने स्त्री को सदियों से इनका दास बना दिा है। अशिक्षित महिलाएं तर्कविहीन होती हैं फिर वैज्ञानिक सोच कैसे विकसित होगा।

नारीवादी विचारधारा स्त्री के चेतन जगत की देन है। एक शिक्षित चेतनशील नारी वर्ग की देन है। नारीवादी विचारधारा के केन्द्र में पितृसत्तात्मक सत्ता व व्यवस्था है, जिसमें स्त्री जीवित रहते हुए भी जीवित नहीं है। घुटनभरी जिन्दगी के साथ उसका शोषण और उत्पीड़न होता है। लिंग और जाति भेद के आधार पर औरत को समाज में दोयम दर्जा दिया जाता है। कार्ल मार्क्स एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था का वैज्ञानिक समाजवाद का सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं, जिसमें किसी भी कोण से नारी का शोषण व दमन नहीं होगा। स्त्री का शोषण सामन्ती और पूंजीवादी व्यवस्था में होता है, समाजवाद में नहीं। इसमें न स्त्री पुरूष की सम्पत्ति होती है और न किसी प्रकार की वैयक्तिक सम्पत्ति होती है। सब कुछ राज्य का होता है। एक वर्गविहीन समाज होगा। वर्ग, लिंग और जाति के आधार पर स्त्री अलग–अलग श्रेणियों में बांटी नहीं जाएगी। जाहिर है इस खुली व्यवस्था में औरत को प्रगति करने का पूर्ण अवसर प्राप्त होगा। वास्तव में मार्क्स का नारीवादी आर्थिक निर्णयवाद का सिद्धान्त भी एक फ्रेम में जड़ी हुई नारीवादीविचारधारा है। प्रश्न है कि यदि मार्क्स का सिद्धान्त इतना ही वैज्ञानिक और शोषण मुक्त है तो फलीभूत क्यों नहीं हुआ। इसका उत्तर है कि सिद्धान्त खराब नहीं होते, व्यक्ति होते हैं जो अपने स्वार्थों के लिहाज से उसे लागू नहीं होने देते। उतना यह भी कटु सत्य है कि मार्क्सवादी सिद्धद्धन्त से नारी जगत की अनेक जटिल समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता यदि हो सकता तो चीन और रूस की महिलाएं आज विभिन्न समस्याओं से क्यों जूझ रही हैं? ठीक इसी तरह रेडिकल नारीवादी विचारधारा नारी देह और नारी सौन्दर्य को केन्द्र में रखकर विचार करती है। नारी का शोषण क्यों किया जाता है, इससे जुड़े प्रश्न इस विचारधारा के विद्वान खड़े करते हैं। नारी शोषण की जड़ में कहीं नारी यौवन का उत्पीड़न समाहित है। रेडिकल विचारधारा के समर्थक इसका विरोध करते हैं। वे सिद्धान्ततः पुरूष का नहीं पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध करते हैं। यह मान लिया जाए कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था समाप्त हो जाती है। स्त्री पूरी तरह स्वतंत्र हो जाती है। शिक्षित हो जाती है। स्वावलम्बी बन जाती है, तो क्या समाज से नारी शोषण, उत्पीड़न अत्याचार, महिला हिंसा आदि की सभी घटनाएं समाप्त हो जाएंगी? भारत की अनेक विशेषताओं में जाति व्यवस्था भी है। क्या इस देश से जाति भेद और लिंग भेद

समाप्त हो सकता है? सरकार की आरक्षण नीति आर्थिक दृष्टि से कितनी ही अच्छी क्यों न हो, इसने जाति भेद और लिंग भेद को बढ़ाया है। सच यह है कि नारी जन्म से नारी नहीं होती, बल्कि उसे पुरूष समाज बनाता है। एक वैदिक युग था जब नारी को महिमामंडित किया गया। अनेक विशेषण उसके साथ जोड़े गए थे। कालान्तर में इनका पराभव इतना हुआ कि वह पुरूष की दासी बनकर रह गई।

जहां तक नारी मुक्ति का प्रश्न है, वह पुरूषवादी गुलाम व्यवस्थाा से जुड़ा है। वह पुरूष–वर्चस्व से मुक्त हो जाए तो क्या नारी मुक्ति का संघर्ष व आन्तदोलन समाप्त हो जाएगा? नारी जीवन से जुड़ी जीने की चुनौतियां, जो उसे कदम–कदम पर मिलती हैं, उससे इतनी सरलता से मुक्त हो पाना कठिन है। परिवार की बंदिशें, बाह्य समाज का छलावा भरा भय आदि उसके चारों ओर बिछी पड़ी हैं। पूरी की पूरी व्यवस्था ही भय मुक्त हो चुकी है, फिर मुक्ति का प्रश्न मुंह बाए खड़ा है। इस व्यवस्था से संघर्ष कैसे किया जाए जो भ्रष्ट व्यवस्था का पर्यावाची बन गया। नारी का देह सौन्दर्य बाजार का अंग बनता जा रहा है। उपभोक्ता बाजार में वह वस्तु की तरह खरीदी और बेची जाती है। धन के लिए आज शिक्षित और सम्भ्रान्त परिवार की नारी किसी भी सीमा तक बाजार में उतर सकती है। विज्ञापनों में उसे अर्ध–नग्न होने में लाज नहीं आती। फिल्मों में आलिंगन और चुम्बन के दृश्य आम घटनाएं बन चुकी हैं। बलात्कार, अपहरण, महिला हिंसा आदि नारी को खुले आम चुनौती देते हैं। ऐसी स्थिति में नारी मुक्ति का प्रश्न अनेक प्रश्नों के साथ जुड़ा है। नारी चुनौतियों से सम्बन्धित है। इसलिए नारी मुक्ति महज यौन शोषण से नहीं जुड़ा है। नारी जब तक पुरूष की सेच और मानसिकता में एक वस्तु की तरह बैठी है, जिससे दाम लगते हैं, तब तक वह मुक्त कैसे हो सकती है। लाख स्वतंत्र और स्वावलम्बी होने पर भी वह न तो स्वतंत्र है और न लिंग भेद और जाति भेद से ऊपर समझी जाती है। यदि कुछ सही होना है तो पुरूष और स्त्री दोनों की सोच और मानसिकता में परिवर्तन होना आवश्यक है। इसके साथ मैं यह कहना चाहूँगा कि नारी को अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए अपने चरित्र और आचरण को भी इस्पात की तरह कठोर बनाना होगा, जिससे कोई पुरूष इसको ठग न सके। शोषण और उत्पीड़न न कर सके। अत्याचार न कर सके आदि। नारी का विचलित व्यवहार और अथ के पीछे अंधी दौड़ कहीं न कहीं स्त्री को पथभ्रष्ट करती है। संघर्ष और आन्दोलन कमजोर नहीं, बल्कि मजबूत संकल्प शक्ति से लड़ा जाता है। वे स्त्रियां जो आज देश के शीर्ष पदों पर विराजमान हैं, वे प्रगतिशील ही नहीं है, वरन उनकी इच्छाशक्ति बहुत शक्तिशाली है। किसी ने कहा है, ''कश्तियां बदलने की जरूरत नहीं, दिशा बदल दो किनारा मिल जाएगा''।

कभी–कभी मैं महसूस करता हूँ कि नारी आन्दोलन और नारीवादी विचारधारा के आन्दोलनों के केन्द्र में पितृसत्तात्मक व्यवसाी, पुरूषों का वर्चस्व, लिंग और जाति भेद, नारी का देह सौन्दर्य, नारी एक वस्तु की तरह खड़ी बाजार में आदि इसके विषय बन गए हैं। वास्तव में जब शासन–प्रशासन आर्थिक–सामाजिक भ्रष्ट और अनैतिक व्यवस्था से उबरते नहीं हैं, नारी ठगी जाती रहेगी। आज जाने कितने बड़े अधिकारी और मंत्री बलात्कार के मुकदमों में आरोपित हैं। महिला हिंसा में आरोपित हैं। प्रतिदिन समाचार पत्रों में महिला हिंसा की घटनाएं और हत्याएं जैसी घटनाएं आम हो गई हैं। शासन, प्रशासन और व्यवस्था पूरी तरह से लाचार दिख रही है। अंत में मैं चाहूँगा कि नारी समस्याओं का समाधान नारी के मजबूत संगठन ही कर सकते हैं यह संगठन ही सरकार पर दबाव सकते हैं। महिला अस्मिता की रक्षा के लिए एक बड़े समग्र आन्दोलन की आवश्यकता है। इसीलिए कहता हूँ कि '' एक आग का दरिया है और डूब के जाना है''। महिला सशक्तीकरण की अवधारणा महिला जगत की उन समस्याओं से सीधा जुड़ा है, जो सदियों से उसे बांधे है। उन ढोंगी और अंधविश्वास से भे मूल्यों को त्यागना होगा। दूसरी ओर पुरूष को मानसिक रूप से तैयार करना होगा कि नारी मात्र देह सौन्दर्य की वस्तु नहीं है, बल्कि भविष्य की पीढ़ी की मां है। उसके समर्थ होने से ही परिवार, समाज व देश शक्तिशाली बनेगा।

<u>सन्दर्भ</u>

1. एस.ए.डंगे, इण्डिया फ्राम प्रिमिटिव कम्युनिज्म टू स्लेवरी, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1961, पृष्ठ 117।